इकाई–16

भाषा की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 भाषा का अर्थ

16.3 भाषा की परिभाषा

16.3.1 संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ

16.3.2 आधुनिक भारतीय भाषा वैज्ञानिकों की परिभाषाएँ

16.3.3. पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

16.4 भाषा की प्रकृति एवं विशेषताएँ

16.4.1 भाषा सामाजिक वस्तु है

16.4.2 भाषा ध्वनियों का समूह है

16.4.3 भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है

16.4.4 भाषा व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है

16.4.5 भाषा सर्वव्यापक है

16.4.6 भाषा सतत प्रवाहमयी है

16.4.7 भाषा चिरपरिवर्तनशील है

16.4.8 भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है

16.4.9 भाषा अर्जित सम्पत्ति है

16.4.10 भाषा नैसर्गिक क्रिया है

16.4.11 भाषा का अंतिम रूप नहीं है

16.5 भाषा की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्त

16.5.1 दैवी सिद्धान्त

16.5.2 संकेत सिद्धान्त

16.5.3 डिंगडांग सिद्धान्त अथवा धातु सिद्धान्त

16.5.4 अनुकरण सिद्धान्त

16.5.5 मनोभावाभिव्यंजकता या आवेग सिद्धान्त

16.5.6 श्रमपरिहणमूलकता या यो–हे–हों सिद्धान्त

16.5.7 संगीत सिद्धान्त

16.5.8 इंगित सिद्धान्त

16.5.9 सम्पर्क सिद्धान्त

16.5.10 टा–टा सिद्धान्त

16.5.11 समन्वय सिद्धान्त

16.6 पारिभाषिक शब्दावली

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.8 सारांश

16.9 संदभ ग्रंथ सूची

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में भाषा विज्ञान से सम्बन्धित विषय भाषा के अर्थ प्रकृति एवं भाषा की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तो के बारे में विस्तृत विवरण दिया जा रहा है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भाषा के अर्थ एवं परिभाषा के बारे में बता सकेगे
- भाषा की प्रकृति एवं विशेषताओं के बारे में बता सकेंगे,
- भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्त के बारे में बता सकेगें ।

16.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आप भाषाविज्ञान से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करेंगे। भाषाविज्ञान में भाषा की उत्पत्ति से लेकर उसकी विशेषताएँ, विकास, विभिन्न रूप, भाषा विज्ञान का स्वरूप, अध्ययन के अंग, अध्ययन की पद्धत्तियाँ, अन्य ज्ञान–विज्ञानों से सम्बन्ध, ध्वनि–विज्ञान, वाक्य–विज्ञान, रूप–विज्ञान, अर्थ–विज्ञान आदि विषय हैं।

भाषा विज्ञान विषय का प्रारम्भ भाषा से होता है। भाषा क्या है ? उसकी आवश्यकता क्यों हुई ?, विभिन्न विद्वानों ने भाषा की क्या परिभाषाएँ दी, भाषा की प्रकृति एवं उसकी विशेषताएँ क्या हैं ? भाषा के विभिन्न रूप भाषा की उत्पत्ति के सिद्वान्त, भाषा परिवर्तन की दिशाएँ और कारण भाषा का स्वरूप आदि समझा जा सकता है। यह इकाई भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्वान्तों से जुड़ी हुई है। भाषा की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख सिद्वान्तों क बारे में बताने से पूर्व वहाँ भाषा के अर्थ परिभाषा एवं प्रकृति पर पहले प्रकाश डाला गया है।

भाषा की उत्पत्ति विषय को लेकर विद्वानों में मतभद है। उन्होनें अपने–अपने विचार से भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों की खोज कर इस जटिल प्रश्न का उत्तर ढूँढने का प्रयास किया। कई विद्वानों का कहना है कि भाषा की उत्पत्ति का विषय भाषा–विज्ञान का है ही नहीं। वे इस प्रश्न को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। यदि भाषा का विकास और उसका प्रारम्भिक रूप अध्ययन भाषा–विज्ञान का विषय है तो भाषा के उद्भव विषय पर विचार किया जाना निश्चय ही भाषा–विज्ञान का विषय है।

16.2 भाषा का अर्थ

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह व्यवहार कर सकता है एवंअपने जीवन को उपयोगी बना सकता है। समाज में रहते हुए अपने विचारों के आदान–प्रदान के लिए उसे वार्तालाप करना ही पड़ता है। समाज में विचार–विनिमय किसी माध्यम के द्वारा ही संभव है। प्रारम्भ में मनुष्य अपने हाव–भाव द्वारा, संकेतो द्वारा, स्पर्श द्वारा तथा मुख के विभिन्न अंगो के सहारे ध्वनि–उच्चारण करके अपनी भावाभिव्यक्ति करता था। किन्तु भावाभिव्यक्ति के इन साधनों का अधिक उपयोग नहीं होता था। मानव के विकास के साथ–साथ भाषा का भो विकास हुआ। अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए मानव समाज में जिस साधन का उपयोग करता है उसे सामान्यतः भाषा कहा जाता हैं।

भाषा अपने व्यापक रूप में वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को प्रकट करते हैं। किन्तु भाषा विज्ञान में भाषा का विश्लेषण इतने व्यापक रूप में नहीं किया जाता। भाषा विज्ञान में भाषा उसे कहते हैं जो बोली और सुनी जाती है।

16.3 भाषा की परिभाषा

भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से निष्पन्न है। अभिप्राय यह है कि भाषा वह है

जिससे कछ बोला जा सकता है या कहा जा सकता हैं।

विद्वानों ने भाषा की परिभाषा अनेक प्रकार से की है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण समझ लेना आवश्यक हैं। यहाँ विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ दी जा रही है

16.3.1 संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ–

1. महर्षि पतंजलि : इन्होने पाणिनी के अष्टाध्यायी के महाभाष्य में भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है

   ''व्यक्तां वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।''

   महा भाष्यकार ने व्यक्त वर्णात्मक वाणी को ही भाषा की संज्ञा दी है।

2. भर्तृहरिः : इन्होने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है –

   ''शब्द कारणमर्थस्य सहि तेनोपजायते।
तथा च बुद्धिविषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते।''
''बुद्वयर्थादेव बुद्धयर्थे जाते तदानि दृश्यते।''

   भाषा दो बुद्वियों के बीच विचारों के बीच आदान–प्रदान का एक माध्यम है।

3. अमरकोष –

   ''ब्राही तु भारती भाषा गीर् वाग् वाणी सरस्वती।''

   भाषा को वाणी का पर्यायवाची बताया गया है।

16.3.2 आधुनिक भारतीय भाषा–वैज्ञानिकों की परिभाषाएँ

1. **डॉ. मंगलदेव शास्त्री** – भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते है, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीर–अवयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक अथवा व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।
2. **पं. कामता प्रसाद गुरू**– ''भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली–भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्वयं समझ सकता है।'' (हिन्दी व्याकरण)
3. **डॉ. श्यामसुन्दरदास** – ''मुनष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और यति का आदान–प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं (भाषा विज्ञान)
4. **डॉ. उदयनारायण तिवारी**– ''भाषा मनुष्य के प्रतीकात्मक कार्यों का प्राथमिक एवं बहुविस्तृत रूप है। इसके प्रतीक ध्वनि अवयवों से उत्पन्न ध्वनि अथवा ध्वनि समूहों से बने होते हैं एवं विभिन्न वर्गों तथा आकारों में इस प्रकार सजाये हुए रहते हैं कि उनका संयुक्त एवं सुडौल आकार बन जाता है।'' (भाषा–शास्त्र की रूप रेखा)
5. **डॉ. बाबूराम सक्सेना** – ''जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता हैं, उसे भाषा कहते हैं।'' (भाषा विज्ञान के सिद्वान्त तथा हिन्दी भाषा)
6. **आचार्य किशोरीदास वाजपेयी** – ''विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है। जिसके द्वारा हम अपने विचार एवं मनोभाव दूसरो के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।

7. **भोलानाथ तिवारी** – ''भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा–समाज के लोग आपस में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।'' (भाषा विज्ञान)

16.3.3 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

1. **प्लेटो** – ''विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है।''
2. **मैक्समूलर के अनुसार** – भाषा और कुछ नही है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय हैं जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित हैं।'' (मैक्समूलर– भाषा विज्ञान पर व्याख्यान) अनु. डॉ हेमचन्द जोशी
3. **कोचे** – "Language is articulate, Limited organized sound, employed expressions". अर्थात् भाषा स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठिन उस ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है। (Croce- Theory of Analysis)
4. **ब्लाक और ट्रेगर** – "A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operativetes" भाषा व्यक्त ध्वनि चिह्नों की वह पद्धत्ति है जिसके माध्यम से समाज–समूह परस्पर व्यवहार करते हैं। (Block and Trager- Out line of lingislics Analysis) करते है
5. **हेनरी स्वीट** – "Language may be defined as expression of thought by means of speech- sound" अर्थात ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को अभिव्यक्त करना ही भाषा है। (Henry sweet - The History of language)

भाषा की उपर्युक्त परिभाषाओं में चार बातों पर ध्यान आकृष्ट किया जाता है

1. भाषा व्यवस्था पर आधारित है।
2. भाषा संकेतात्मक है।
3. भाषा वाचिक ध्वनि–संकेत है।
4. भाषा यादृच्छिक है।

इन विशेषताओं का विवरण इस प्रकार है–

1. **भाषा व्यवस्था पर आधारित है** – भाषा केवल ध्वनियों का समूह मात्र नहीं है। इन ध्वनियों में ऐसी व्यवस्था होती हैं जिसके कारण एक व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था में शब्दों को सीखता हैं।
2. **भाषा संकेतात्मक है** – प्रत्येक भाषा में जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं उनका किसी वस्तु किया या कार्य से संबंध होता हैं, ये ध्वनियाँ प्रतीकात्मक होती हैं। कोई भो ध्वनि किसी एक भाषा में जिस वस्तु का बोध करती हैं वही ध्वनि किसी दूसरी भाषा में किसी अन्य अर्थ का बोध कराती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा की ध्वनियाँ संकेतात्मक या प्रतीकात्मक हैं।
3. **भाषा वाचिक ध्वनि संकेत है** – मनुष्य अपने मुख–अवयवों से जिन संकेतो का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अन्तर्गत आते हैं। अन्य प्रकार के अंगो से उत्पन्न ध्वनि संकेत भाषा के अन्तर्गत नहीं आते। वाचिक ध्वनि संकेत सभो प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ है। मुख–अवयव से उच्चरित सभो ध्वनियॉ सार्थक नहीं होती और न ही उनको भाषा में ग्रहण किया जाता है – जैसे छींकना, थूकना आदि। इसके अन्तर्गत वाचिक एवं लिखित भाषाएँ ही आती है।

4. **भाषा यादृच्छिक संकेत है** – भाषा में जिन ध्वनि संकेतो का प्रयोग किया जाता है वे पूर्णयता यादृच्छिक (एच्छिक) है। अर्थात् भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द सार्थक होते हैं किन्तु उनका भावों या विचारों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक भाषा में विशेष ध्वनि को किसी विशेष अर्थ का वाचक मान लिया जाता है। दूसरी भाषा में अन्य दूसरा शब्द उस अर्थ का बोध कराता है। यही कारण है कि सभो भाषाओं में एक हो वस्तु के लिए अलग–अलग शब्द का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए हम हिन्दी भाषी माता–पिता के बालक को लें। वह अपने माता–पिता एवं रिश्तेदारो द्वारा उच्चरित शब्द का अनुसरण करता हुआ शब्द बोलता है जैसे माता, बहिन, कुत्ता या गाय। वह इन शब्दों का विवेचन करने म असमर्थ है, लेकिन वह इन शब्दों से जुड़े अर्थ को समझ लेता है। उसी प्रकार अंग्रेजी भाषी माता–पिता के बालक को लें। वह इन अर्थों को व्यक्त करने के लिए मदर, सिस्टर व डॉग जैसे शब्दों का प्रयोग करता है।

   इससे स्पष्ट होता है कि भाषा में प्रयुक्त सभो संकेत यादच्छिक हैं। जिस भाषा में जिस अर्थ के लिए जो संकेत मान्य हैं, वही अर्थ भाषा में लिया जाता है।

16.4 भाषा की प्रकृति और प्रमुख विशेषताए

भाषा के सहज गुण–धर्म को भाषा की प्रकृति कहते हैं और इसे ही भाषा की विशेषताएँ और लक्षण भो कहते हैं। भाषा प्रकृति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :–

1. सर्वमान्य प्रकृति जो सभो भाषाओं के लिए मान्य होती है।
2 विशिष्ट भाषागत प्रकृति विशेष भाषा मे पायी जाती है।

   इससे दो भाषाओं की भिन्नता स्पष्ट हो जाती है।

   यहाँ उन विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा रहा है जो विश्व की सभो भाषाओं में पायी जाती है।

16.4.1 भाषा सामाजिक वस्तु है – जिस प्रकार मनुष्य सामाजिक प्राणी है उसी प्रकार भाषा भो सामाजिक वस्तु है। भाषा का जन्म व विकास समाज में ही हुआ, भाषा का प्रयोग भो समाज में ही होता है। भाषा के द्वारा हम अकेले में सोचते –विचारते है। यद्यपि इस भाषा यादृच्छिक ध्वनि–प्रतीकों पर आधारित भाषा से भिन्न है। बालक जिस समाज में जन्म लेता है उस समाज की भाषा भो सीखता है। भाषा जितनी विकसित होती है वह समाज भो उतना ही विकसित कहलाता है

16.4.2 भाषा ध्वनियों का समूह है – भाषा ध्वनि समूह है लेकिन ध्वनियों का समूह मात्र नहीं है क्योंकि ध्वनि का अर्थ है जो सुना जाय अतः उसका सम्बन्ध केवल कान से है, किन्तु भाषा वर्ण होने के नाते उसका सम्बन्ध आँख से भो है। ध्वनि सार्थक भो हो सकती है तथा निरर्थक भो, व्यक्त भो हो सकती है और अव्यक्त भो किन्तु भाषा का सम्बन्ध व्यक्त एवं सार्थक ध्वनियों से है।

16.4.3 भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है – कुछ लोगो का मानना है कि जमीन–जायदाद, धन–दौलत की तरह भाषा भो पैतृक सम्पत्ति है। बालक को वही भाषा विरासत में मिलती है जो उसके माता–पिता की भाषा है। यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है। किसी कारणवश यदि बालक बोलने से पहले अपने माता–पिता को छोड़कर किसी अन्य भाषी व्यक्ति के साथ रहता है तो वह उसी भाषा को सीखता है।

16.4.4 भाषा व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है – भाषा सामाजिक वस्तु है। समाज से ही उसकी उत्पत्ति और विकास हुआ है। भाषा मे होने वाले परिवर्तन भो समाजकृत होते हैं न कि व्यक्तिगत।

16.4.5 भाषा सर्वव्यापक है – विश्व के समस्त कार्य भाषा के द्वारा ही होते हैं। ज्ञान भो भाषा पर आधारित है। व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध या व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध भाषा

के द्वारा ही है। मनुष्य का चिन्तन–मनन, भावाभिव्यक्ति का मूल साधन भाषा है। यह भाषा की सर्वव्यापकता का द्योतक है।

भर्तृहरि ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए वाक्यपदीय में लिखा है –

''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाहते।
अनुबिद्धमिव ज्ञानं सवं शब्देन भासते।'' वाक्यपदीय 123–24

16.4.6 भाषा सतत् प्रवाहमयी है – मनुष्य की तरह भाषा भो सतत् प्रवाहमयी है। समाज से ही भाषा की उत्पत्ति एवं विकास हुआ और आज तक गतिशील है।किसी भो व्यक्ति या समाज के द्वारा भाषा में परिवर्तन किया जा सकता है। अपने जन्म से लेकर आज तक भाषा का स्वरूप परिवर्तित हुआ है।

16.4.7 भाषा चिरपरिवर्तनशील है – परिवर्तन सृष्टि का नियम है और भाषा भो परिवर्तनशील है। किसी भो देश की भाषा का स्वरूप एक काल में जैसा होता है वैसा दूसरे काल में नहीं होता उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यह परिवर्तन लक्षित होता है। भाषा परिवर्तन के अनेक कारण हैं जैसे – अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक रचना– भिन्नता भोगोलिक सांस्कृतिक, सामाजिक परिस्थितियों की भिन्नता।

16.4.8 भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है – विभिन्न भाषाओं के प्राचीन,
मध्ययुगीन तथा वर्तमान रूपों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप संयोगावस्था में होता है। धीर–धीरे इसमें परिवर्तन आता गया और उसमें वियोगावस्था भो आ जातो है।

संयोगात्मक भाषाएँ वे हैं जिनके शब्दों तथा वाक्यों में उपसर्गों और प्रत्ययों का योग रहता है अर्थात वाक्य के विभिन्न अवयव आपस में मिले हुए लिखे बोले जाते हैं। अयोगात्मक भाषाएँ वे होती है जिनमें उपसर्ग प्रत्यय आदि जोड़कर शब्द नहीं बनाये जाते ह अर्थात् वाक्यों के बनाने में उनके रूपों का कोई योग नहीं रहता। परवर्ती अवस्था में संयोगात्मक भाषाएँ धीरे–धीरे शिथिल हो जाती हैं।

16.4.9. भाषा अर्जित सम्पत्ति है – भाषा परम्परागत है यह परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति है। यह युगों–युगों की अनमोल सम्पत्ति है। पैतृक सम्पत्ति और परम्परा से प्राप्त भाषा की सम्पत्ति में अन्तर है क्योंकि भाषा की पैतृक सम्पत्ति अर्जित करनी पड़ती है। भाषा परम्परागत होते हुए भो उसे श्रमपूर्वक सीखकर अर्जित करना पड़ता है, स्वयं का बनाना पड़ता है।

भाषा सम्पत्ति होने के साथ–साथ अर्जित भो करनी पड़ती है। सम्पत्ति इसलिए है कि भाषा का व्यवहार या उसका प्रयोग भाषा के कोश को रिक्त नहीं करता अपितु समृद्ध करता है। प्रत्येक पीढ़ी ने इसे अपने सामर्थ्यानुसार बढ़ाया है।

भाषा को सीखना पड़ता है, अर्जित करना पड़ता है, इसलिए इसे अर्जित सम्पत्ति कहा गया है। बच्चा चाहे कितने ही ज्ञानी व्यक्ति के घर में जन्म ले उसे भाषा सीखनी ही पड़ेगी।

16.4.10 भाषा नैसर्गिक किया है –

भाषा के दो रूप है।

मातृ भाषा एवं अन्य भाषाएँ।

मातृ भाषा को बालक अनुकरण के द्वारा सहज ही रूप में तब सीखता है जब उसकी बुद्धि अविकसित होती है। अन्य भाषाऍ बौद्धिक प्रयत्न से तब सीखी जाती है जब बुद्धि थोडी विकसित हो जाती है। कोई भो भाषा सीख लेने के बाद उसका प्रयोग बिना व्यवधान के अबाध गति से किया जा सकता है।

16.4.11 भाषा का अंतिम रूप नहीं है – कोई भो वस्तु बनते–बनते अपने अंतिम रूप में पहुँच जाती है किन्तु भाषा के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है।। भाषा का अंतिम रूप नहीं है वह चिरपरिवर्तनशील है। इसलिए उसका अंतिम रूप प्राप्त करना असंभव है।

16.5 भाषा उत्पत्ति के सिद्वान्त

प्राचीन काल से ही भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न महत्त्वपूर्ण रहा है। संसार में भाषा किस प्रकार बनी, शब्द और वाक्य कैसे बने ? कैसे इनसे निश्चित अर्थ ग्रहण किया गया ? इस सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक सिद्वान्तों को सामने रखा। इनमें से दो सिद्धान्त प्रमुख हैं –

1. निगमन पद्धति अर्थात प्रत्यक्ष मार्ग
2. आगमन पद्धति अर्थात् परोक्ष मार्ग।

प्रत्यक्ष मार्ग म भाषा की उत्पत्ति के मूल बिन्दु को विभिन्न आधारों से पकड़ने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् ये सीधे जन्म को पकड़ने का प्रयास करते हैं। परोक्ष मार्ग में भाषा की उत्पत्ति पर दृष्टि न रखते हुए उसके वर्तमान रूप का विवेचन किया जाता है। अर्थात् उनके ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर वर्तमान से भ्तकाल की ओर सर्वेक्षण किया जाता है। जिससे भाषा के आरम्भिक रूप का कुछ अनुमान लगाया जाता है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि भाषा की उत्पत्ति का विषय भाषाविज्ञान का है ही नहीं । वे इस प्रश्न को अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते। उनका तर्क यह है कि यह विषय मात्र सम्भावनाओं पर आधारित है। यदि भाषा का विकास और उसका प्रारम्भिक रूप अध्ययन भाषाविज्ञान का विषय है तो भाषा के उद्भव पर विचार किया जाना निश्चय ही भाषाविज्ञान का विषय है। भाषा–उत्पत्ति का प्रश्न नितान्त विवादास्पद है। विभिन्न भाषावैज्ञानिकों ने भाषा उत्पत्ति पर जो सिद्वान्त रखे है उनमें से अधिकाशंतः कल्पना पर आधारित है। कोई भो सिद्धान्त पूर्णतर्कसंगत, पूर्ण प्रामाणिक नहीं है।

मानव की उत्पत्ति तथा उसकी अभिव्यक्ति के साथ ही भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न जुड़ा हुआ है। आगे हम भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए मतों का विवेचन करेंगे।

16.5.1 दैवी सिद्वान्त (Divine Therory)

भाषा की उत्पत्ति के सम्बंध में यह सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्वान्त को मानने वालों का विचार है कि जिस तरह से सृष्टि के अन्य पदार्थो का निर्माण ईश्वर ने किया है उसी प्रकार भाषा भो ईश्वरीय शक्ति से उत्पन्न हुई है। अर्थात् ईश्वर ने मनुष्य को वाणी की शक्ति दी है और उसी समय भाषा का निर्माण हुआ है। निरूक्त के प्रणेता यास्क के अनुसार ''प्रवरो'' ने अवरों को यह ज्ञान दिया। पतंजलि की दृष्टि से ईश्वर से पूर्व कोई गुरू नहीं था। वही अनादिकाल से आदि गुरू है। ईश्वर में विश्वास रखने वाले इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। उनकी यह धारणा है कि भाषा को ईश्वरकृत न मानने पर ईश्वर के ईश्वरत्व में कमी आती है। यही कारण है कि प्रायः सभो वर्गों के प्रणेताओं ने अपने–अपने धर्मग्रन्थों को ईश्वर रचित बताया है। वैदिक धर्म को मानने वाले वेद को अनादि और ईश्वर–निर्मित मानकर इसे नित्य कहते है –

''दैवी वाचमजन्यन्त देवा ::
तां विश्वरूपा पशर्वों वदन्ति।'' ऋग्वेद

अर्थात देवों ने वाग्देवी को उत्पन्न किया है। इसे सभो प्राणी बोलते हैं। इंजील को धर्मग्रन्थ मानने वालों के लिए आदम की आदिम भाषा यहूदी भाषा है जो ईश्वर प्रदत्त है। '' कच्चायन '' पालि व्याकरण के रचयिता के अनुसार मागधी भाषा सारी भाषाओं की मूल है। जैन लोग तो अर्ध–मागधी को प्राचीनतम ही नहीं, वरन् प्राचोन काल में पशु–पक्षियों द्वारा भो रसास्वादन की जाने वाली भाषा मानी है। मनु ने भो अपनी मनुस्मृति में लिखा है :–

''सर्वेषां सु समानानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।।'' (मुनस्मृति)

ब्रहा ने भिन्न–भिन्न कर्मों और व्यवस्थाओं के साथ–साथ सारे नामों का निर्माण भो सृष्टि के आदि में वेद शब्दों से ही किया।

पाणिनि भारतीय व्याकरण की उत्पत्ति शिव के डमरू से मानते है। यथा–

''नृत्यावसाने नटाजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धानेत द्विमरो शिव सूत्रजालम्।।''

अर्थात् संस्कृत की सम्पूर्ण वर्णमाला अइउण्, ऋलृक् आदि चौदह माहेश्वर सूत्रों से हुई है। कैथोलिक ईसाई '' हिषू'' भाषा को संसार की सभो भाषाओं की जननी मानते हैं। मुसलमानों के अनुसार खुदा ने पैगम्बर को अरबी भाषा ही सर्वप्रथम सिखायी।

समीक्षा

उपर्युक्त मतों में केवल आस्था और विश्वास है यह सिद्धान्त श्रद्धा पर आधारित है इसके पीछे वैज्ञानिक आधार का अभाव है। इस सिद्धान्त पर अनेक आक्षेप लगाए जाते हैं –

1. इस सिद्धान्त को मान लिया जाए कि भाषा ईश्वर प्रदत्त है तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि संसार की विभिन्न भाषाओं में इतना भद क्यों ? उनमें तो बहुत अधिक समानता होनी चाहिए थी। फिर ऐसा क्यों नहीं हुआ ? इसके विपरीत मनुष्येतर सभो प्राणियों की अपनी– अपनी ध्वन्यात्मक व्यंजना में समानता है। संसार के सभो पक्षियों की बोली भो एक जैसी होती है फिर सृष्टि के सभो प्राणी एक ही भाषा का प्रयोग क्यों नही करते ?

2. इस सिद्धान्त को अपनाने पर दूसरा आक्षेप यह है कि यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त है तो मानव अपने शैशव काल से ही विकसित भाषा का प्रयोग करता है जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। मनुष्य भाषा धीरे–धीरे सीखता है। वह ईश्वरप्रदत नैसर्गिक नहीं है अपितु मनुष्य उसे अर्जित करता है। विभिन्न देशों के राजाओं ने समय–समय पर जन्म लेते ही बच्चों को अलग रख कर इस सिद्वान्त की सत्यता को स्पष्ट करने का प्रयास किया किन्तु इन प्रयोगों से यह सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सका। अकबर ने नवजात शिशुओं को पृथक् अकेले में रखा तो वे बच्चे गूंगे निकले। यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त होती तो वे बच्चे भाषा बोलते हुए मिलते।

   समय–समय पर किए गए प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि बालक जन्म के साथ कोई भाषा सीखकर नहीं पैदा होता और न ही भाषा ईश्वर प्रदत्त है।

16.5.2 संकेत सिद्वान्त (Symbolic Theory)

इस सिद्धान्त को निर्णय सिद्धान्त, प्रतीकवाद और स्वीकारवाद भो कहते है। इस मत के अनुसार मनुष्य आरम्भिक स्थिति में सिर, हाथ, पैर आदि हिलाकर अपने भाव या विचार प्रकट करता था। बाद में भावाभिव्यक्ति का यह साधन उसके लिए अपर्याप्त लगने लगा तब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के सामाजिक समझौते के आधार पर ध्वनि–संकेत निर्माण कर लिए होगें। इस प्रकार मनुष्य ने आपसी सहयोग से भाषा के पूर्ण संकेत निर्धारित किये। डॉ. श्यामसुन्दरदास ने अपने ''भाषा विज्ञान'' नामक ग्रन्थ में कहा है कि ''कुछ साहसो विद्वानों ने एक दूसरा मत प्रतिपादित किया है कि भाषा मनुष्य की सांकेतिक संस्था है। आदिकाल में जब मुनष्यों ने हस्तादि के साधारण संकेतों से काम चलता न देखा, तो उन्होनें कुछ ध्वनि–संकेतों को जन्म दिया। वही ध्वनि संकेत विकसित होते– होते आज इस रूप में दिखाई पड़ते हैं।''

समीक्षा –

यह सिद्धान्त स्वयं मे अपरिपूर्ण एवं अपर्याप्त है। इस सिद्धान्त पर प्रथम आपत्ति तो यह है कि –

1. यदि मान लिया जाए कि ध्वनि संकेत विकसित होने से पहले जिस साधन द्वारा वे भाषाभिव्यक्ति करते थे वह साधन अपूर्ण नजर आने पर वे एकत्रित होकर विचार–विनिमय के लिए ध्वनि संकेत का निर्माण करते हैं तब ये प्रश्न उपस्थित होता है कि उनके पास कोई सशक्त एवं समर्थ साधन था तो भावाभिव्यक्ति के लिए अन्य साधन की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ?
2. बिना भाषा के सामाजिक समझाौता कैसे हुआ ?
3. मानव ने समझौते के आधार पर शब्द का गठन कैस किया ?

इस प्रकार यह सिद्वान्त स्वयं में हास्यास्पद एवं अपूर्ण है।

16.5.3 डिंगडांग अथवा धातु सिद्वान्त (Root Theory)

इस सिद्वान्त को अन्य नाम भो दिए गए जैसे रणन, अनुरणन, अनुरणन मूलक। इस सिद्धान्त की ओर सर्वप्रथम संकेत प्लेटो ने किया लेकिन इसे व्यवस्थित करने का सम्मान प्रो0 हेज को है जिनके मत के आधार पर मैक्समूलर ने इसे पल्लवित किया।

इस सिद्धान्त के आधार पर सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य में एक ऐसी '' विभाविका शक्ति'' थी जिसके कारण जिस चीज के सम्पर्क मे वह आता उसके लिए उसके मुख से स्वयमेव काई ध्वनि निकल जाती है। वह ध्वनि उसके मुख से उसी प्रकार निकलती है जैसे घंटे पर चोट करने पर, झंकार निकलती है। सृष्टि की सभो वस्तुओं की एक ध्वनि होती है और उससे निकलने वाली ध्वनि के आधार पर मानव शब्द निर्माण कर लेता था। इस प्रकार इन धातुओं पर ही भाषा का भवन खड़ा हुआ। धीरे–धीरे इन्हीं धातुओं से भाषा विकसित हुई।

मैक्समूलर ने कहा, '' प्रायः सारी प्रकृति में यह नियम पाया जाता है कि वस्तु टकराने से शब्द करती है। यह शब्द या झंकार प्रत्येक पदार्थ के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार की होती है। ताम्बा, पीतल आदि धातुओं के स्वरूप को थोड़ा– बहुत हम उसके कम्पन से या आधात करने पर उनके उत्तर या प्रतिध्वनि से पहचान सकते हैं। ''

इस सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार जैसे–जैसे भाषा का विकास होता गया वैसे–वैसे धातुओं की संख्या भो घट गई। भाषा उत्पत्ति के समय यह सख्या 400–500 ही रह गई थी। जैसे–जैसे मनुष्य नई–नई वस्तुओं के सम्पर्क में आता रहा वैसे– वैसे उसने नए–नए शब्दों की रचना की। जब भाषा विकसित हो गयी तब यह प्रक्रिया स्वतः ही नष्ट हो गई ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त के विरूद्व अनेक आपत्तियाँ है –

1. भाषा आदिकाल से ही निर्मित हो चुकी थी और धातु अवस्था को बाद में प्राप्त हुई। यह सिद्वान्त विकासवाद के विरूद्व है।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार संसार की समस्त भाषा धातु पर आधारित है। जबकि ऐसा नहीं है। चीनी भाषा इस सिद्धान्त से अलग है।
3. मैक्समूलर के अनुसार भाषा का आरम्भ वणात्मक सम्बन्धों से हुआ है।

   जबकि ऐसा नही है भाषा का आरम्भ मनोभावाभिव्यंजक शब्दो से हुआ है।
4. केवल धातुओ से भाषा नहीं बनती।
5. यह सिद्धान्त कल्पना पर आधारित है। जिसका कोई सुदृढ आधार नही है।

   इस प्रकार यह मत निराधार साबित होता है। स्वंय मैक्समूलर ने भो अपने इस सिद्धान्त को दोषपूर्ण माना था। भाषा की रचना में अन्य अवयवों का भो हाथ होता है केवल धातुओं का नहीं। इस सिद्धान्त से हम भाषा के कुछेक शब्दों की उत्पत्ति के बारे में जान सकते हैं न कि सम्पूर्ण भाषा कों।

16.5.4 अनुकरण सिद्धान्त (Imitatioc Theory)

इस सिद्धान्त कों ''अनुकरणमूलकतावाद'', ध्वनिअनुकरण' सिद्धान्त भो कहते हैं। मैक्समूलर ने इस सिद्धान्त का उपहास करने के लिये ही BOW-WOW सिद्धान्त कहा था, जो कि कुत्ते की बोली का सूचक है। हिन्दी में इसे भो – भों बना लिया गया इसलिये इस सिद्धान्त को ''भों – भों–– सिद्धान्त भो कहा जाता है। इस सिद्धान्त कों मानने वालो में से है – हिटनी, पॉल, हर्डर आदि। जिस प्रकार अनुरणन सिद्धान्त में यह मान लिया था कि मानव ने जड पदार्थों से उत्पन्न ध्वनियों का अनुकरण करते हुए भाषा का विकास किया था उसी प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मानव ने जड चेतन सभो पदार्थों की ध्वनियों का अनुकरण करने का प्रयास किया। जिस वस्तु से जैसी ध्वनि निकलती सुनी गई उस ध्वनि का नाम उसी ध्वनि के अनुकरण पर रख दिया। सर्वप्रथम कुछ शब्द बना लिये फिर उन्ही शब्दों के आधार पर अन्य शब्दों को बनाते हुए भाषा का विकास किया। जैसे – काक, कोकिल, भों – भों, म्याऊं – म्याऊं, झरना, कल–कल, चट–चट, गड–गड, मर्मर, तडतड, मिमियाना, दहाडना, चहकना, चहचहाना, हिनहिनाना आदि। सभो भाषाओं में इस प्रकार के कुछ शब्द मिल जाते हैं।

समीक्षा :–

यह सिद्धान्त पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है। आंशिक रूप से सत्य पर आधारित होने के कारण यह भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सहायक है। मनुष्य ने जड – चेतन पदार्थों की ध्वनियों को सुनकर उसके अनुकरण पर कुछेक शब्दों का निर्माण अवश्य किया है। फिर भो इस सिद्धान्त को अपनाने में अनेक प्रकार की कठिनाईयाँ है :–

1. प्रसिद्ध विद्वान रेनन ने इस सिद्धान्त का जोरदार खंडन करते हुए कहा कि ध्वनियों को उत्पन्न करने में मानव पशु – पक्षियों से भो निकृष्ट सिद्ध होता है।
2. कोई भाषा पूरी की पूरी अनुकरण पर आघारित हो यह संभव नही है। सभो भाषाओं में अनुकरण पर आधरित शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है।
3. यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक हैं कि मनुष्य ने अपनी ध्वनियों पर शब्द का निर्माण क्यों नही किया जबकि यह पशु पक्षियों की ध्वनियों के आधार पर शब्द निर्माण करने में सक्षम है।
4. संसार में कई ऐसी भाषाऐं भो है जिनमें अनुकरणात्मक शब्द है ही नहीं। जैसे – अमेरिका की ''अथवस्कन'' भाषा।
5. यदि अनुकरण के आधार पर शब्दों का निर्माण हुआ तो विभिन्न भाषाओं में एक ही ध्वनि के लिये अलग – अलग शब्द कैसे ?

16.5.5 मनोभावाभिव्यंजकता या आवेग सिद्धान्त

इसे पूह – पूहवाद या मनोभावाभिव्यक्तिवाद भो कहते है। विकासवाद के जनक डार्विन, कांडरसिक, जेस्पर्सन आदि का कहना है कि न केवल मानव में बल्कि पशुओं तक में यह नियम पाया जाता है कि प्रसन्नता, दुःख, आश्चर्य आदि मनोरोगों तथा छींकना, खांसना, फुंकारना आदि अनैच्छिक क्रियाओं के आवेग के समय उनके मुंह से आह, वाह, छिः – छिक आदि शब्द सहज ही निकल जाया करते थें। सम्भव है इन्ही मनोभावाभिव्यंजक शब्दों से ''धीरें–धीरें'' भाषा का विकास हुआ।

समीक्षा –

इस सिद्धान्त को अपनाने में अनेक आपत्तियाँ हैं –

1. संसार की प्रत्येक भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या अल्प है।
2. भाषा में चिन्तन तथा व्यवस्था अनिवार्य है जबकि ऐसी ध्वनियों में इसका अभाव है।
3. भावात्मक आवेग के समय स्वभाविक अभिव्यक्ति संभव नही है।

4. ऐसे भावाभिव्यंजक शब्दों का अस्तित्व वाक्य से बाहर ही रहता है।

5. इस प्रकार के शब्दों से भाषा की उत्पत्ति तर्कसंगत प्रतीत नही होती।

16.5.6 श्रमपरिहणमूलकता या यो–हे–हों सिद्धान्त

इसे श्रम निवारण सिद्धान्त या श्रम ध्वनि सिद्धान्त भो कहते हैं। इस सिद्धान्त के जन्मदाता न्यारे है। उनका कहना है कि जब हम कठिन परिश्रम करते है तब श्वास – प्रश्वास का वेग बढ जाता है। इस प्रक्रिया में स्वर तंत्रियों का कम्पन्न होने लगता है। फलस्वरूप अनेक प्रकार की ध्वनियां उच्चारित हो जाती है और श्रम का परिहार हो जाता हैं। ये ध्वनियां ही क्रिया या कार्य की वाचक हो जाया करती है। जैसे धोबी कपडा धोते समय 'हियों या हियों' कहता हैं, भारी वजन उठाते समय मजदूरो की एक साथ आवाज यो – हे – हो आती है, बूरा कूटने वाले कूटते समय ''हिः हिः'' कहता है। इस प्रकार हम देखते है कि आदि मानव श्रमक परिहार के लिये विश्राम देने के लिये कुछ ध्वनियों का उच्चारण करता होगा और बाद में इसी से भाषा का विकास हुआ होगा।

समीक्षा –

यह सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस पर कई आपत्तियाँ हैं :–

1. इस प्रकार की ध्वनियाँ किसी भाषा मे अत्यन्त सीमित है।
2. ऐसी ध्वनियों की कोई सार्थकता नही होती। निरर्थक ध्वनियों से कभो सार्थक भाषा का विकास संभव नही है।
3. इस सिद्धान्त पर सबसे बडा प्रश्न यह उठ खडा होता है कि जिस समय मनुष्य श्रम नही करता था तब क्या वह चुप या गूंगा रहता था। ऐसा स्वीकरना असंभव है।

16.5.7 संगीत सिद्धान्त (Sing-Song Theroy)

डार्विन, स्पेंसर, यस्पर्सन आदि को इस सिद्धान्त का श्रेय जाता है। इस सिद्धान्त को ''प्रेम सिद्धान्त'' भो कहा जाता है। इस सिद्धान्त को मानने वालो का कहना है कि भाषा की उत्पत्ति संगीत से हुई है। मानव की सहज व स्वाभाविक प्रवृति संगीत के द्वारा ही भाषा के आरम्भिक अक्षरों के निर्माण की चर्चा यह सिद्धान्त करता है। धीरे – धीरे इन शब्दों को अर्थ की प्राप्ति हुई। इसी से भाषा की उत्पत्ति हुई होगी।

समीक्षा –

1. यह सिद्धान्त कोरा अनुमान मात्र है। इसका कोई ठोस आधार नहीं है।
2. आदिमानव संगीत प्रेमी होगा यह कल्पना पर आधारित है।
3. गुनगुनाने के अक्षरों को अर्थ की प्राप्ति कैसी हुई इसका कोई समाधान नही मिलता।

16.5.8 इंगित सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं डॉ. रायें, रिचर्ड तथा जोहान्सन। बाद में डार्विन ने भो छः असबद्ध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त को सिद्ध किया। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य ने स्वयं अपने ही अंगो से होने वाली चेष्टाओं या ध्वनियों का वाणी द्वारा अनुकरण किया और इस प्रकार धीरे – धीरें भाषा का विकास हुआ। उदाहरणार्थ, मनुष्य जब पानी पीता था तो बार – बार ओठों के पास लाकर अन्दर को श्वास खीचनें में पा – पा की ध्वनि होती थी। इसके ही अनुकरण पर पानी, पीना, पिपासा आदि शब्द बना लिये गयें।

समीक्षा – इस सिद्धान्त कों अपनाने में यह आपत्तियाँ हैं :–

1. यह सिद्धान्त सारहीन है क्योंकि मनुष्य द्वारा अपनी चेष्टाओं एंव ध्वनियों का अनुकरण कुछ सही प्रतीत नहीं होता है।

2. इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य ने अनुकरण द्वारा भाषा की उत्पत्ति की है जो तर्क संगत नहीं प्रतीत होता।

3. मानव द्वारा स्वयं का अनुकरण करना अनुकरण नहीं कहा जा सकता। मनुष्य ने अपने ही संकेतो को कैसे घवयात्मक संकेतो में परिवर्तित किया यह समझ से परे है।

16.5.9 सम्पर्क सिद्धान्त

प्रसिद्ध मनोविज्ञान शास्त्री प्रो. जी. रेवेज इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। उन्होनें मनोविज्ञान के आधार पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार आदि मानव जब अपने दूसरे साथी के सम्पर्क में आया तथा आसपास के वातावरण के सम्पर्क में आया इसी सम्पर्क भावना से कुछ ध्वनियाँ सहज ही निकल पडी होगी और भाषा की उत्पत्ति हुई। उन्होने भाषा की जो परिभाषा दी वह इस प्रकार है '' भाषा एक साधन है, जिसके द्वारा आदेश दिये जाते हैं, इच्छाऐं व्यक्त की जाती है। वस्तुपरक और व्यक्तिपरक दृष्टिकोणों का संकेत किया जाता है तथा सम्प्रेषण को उत्तेजित करने के लिये प्रश्न पूछे जाते ह। इनका उद्देश्य पारस्परिक सम्बद्धता होता है। भाषा रूप साधन, उच्चारित, ध्वन्यात्मक प्रतीकों के सहारे क्रियाशील होते हैं।''

सम्पर्क स्थापित करना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृति है। आरम्भ में मनुष्य ने चिल्लाना, पुकारना जैसी ध्वनियों के माध्यम से सम्पर्क स्थापित किया। जैसे–जैस मनुष्य की आवश्यकता बढती गई वैसे–वैसे उसके द्वारा सहज ही उच्चारित होने वाली ध्वनियों का प्रयोग भो बढता गया। बाद में इन ध्वनियों के अर्थ निश्चित होने लगें। प्रारम्भ में भावों के स्तर पर संपर्क हुआ होगा बाद में विचारों के स्तर पर संपर्क होने लगा होगा। इसी प्रकार भाषा की उत्पत्ति हुई और भाषा का विकास हुआ।

रेवेज ने अपने सिद्धान्त में क्रियात्मकता पर विशेष जोर दिया। उनके मतानुसार सम्पर्क के फलस्वरूप वह सक्रिय हुआ होगा और इसी सक्रियता के कारण ध्वनियाँ उत्पन्न हुई होगी बाद में उसने सोहेश्यता ग्रहण की होगी। उनकी यह भो मान्यता रही कि पहले भाषा में क्रियाशब्द बने होगें और बाद में संज्ञाशब्द।

समीक्षा :–

1. यह सिद्धान्त दूसरे सिद्धान्तों की अपेक्षा पर्याप्त युक्ति संगत है।

2. भाषा की उत्पत्ति एवं विकास पर यह सिद्धान्त प्रकाश डालने में काफी हद तक सफल रहा है।

3. यह सिद्धान्त मानव के जन्म के साथ ही भाषा के जन्म की बात स्वीकार करता हुआ मानव विकास तथा भाषात्मक विकास को एक साथ देखता है।

4. इस सिद्धान्त में कल्पना तथा अनुमान दोनो का सहारा लिया गया है।

5. प्रसिद्ध विद्वान कॉसिडी के मतानुसार इस सिद्धान्त के होते हुए भो भाषा की उत्पत्ति की समस्या का समाधान पूर्णतया नहीं हो सका है।

16.5.10 टा–टा सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रारम्भ में आदिम मानव जब काम करते थें उस समय जाने अनजाने उच्चारण अवयवों से काम करने वाले अवयवों की गति का अनुकरण करते थें। इस अनुकरण से कुछ ध्वनियों का बाद में इन ध्वनि–संयोगों से शब्दों का उच्चारण हो जाया करता था। इन्हीं से धीरे–धीरे भाषा का विकास हुआ। इस सिद्धान्त में अनुकरण की प्रवृति की बात रंगित सिद्धान्त से मिलती जुलती है।

समीक्षा – इस सिद्धान्त पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गई –

1. इस प्रकार का अनुकरण किसो भो समय के मानव के लिये संभव नहीं है।

2. बन्दरों में भो यह प्रवृत्ति दिखाई नही देती तब मानव के लिये ऐसी प्रवृति के बारे में सोचना कल्पनीय है।

3. यह अनुमान कपोलकल्पित है।

4. आरम्भिक निरर्थक ध्वनियों से भाषा का विकास किस प्रकार हुआ यह समझ से बाहर है।

इस तरह यह सिद्धान्त भो अमान्य है।

16.5.11 समन्वय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हेनरी स्वीट हैं। अभो तक भाषा की उत्पत्ति विषय पर जितने सिद्धान्त हमने ऊपर जाने व समझे उनमें से कई सिद्धान्त सर्वथा अमान्य हैं, कई एकांगी है तो कई भाषा की उत्पत्ति पर केवल थोडा सा प्रकाश डालने में सहायक हैं। ऐसे में जिन सिद्धान्तों में आंशिक सत्य का प्रकाश हैं उनको सभन्वित कर इस प्रश्न का उत्तर खोजा जा सकता है। हेनरी स्वीट ने ऐसा ही किया। उन्होने किसी नए सिद्धान्त को खोजने के बजाय (1) अनुकरण सिद्धान्त (2) आवेग सिद्धान्त (3) प्रतीक सिद्धान्त एवं (4) उपचार सिद्धान्त का समन्वित रूप प्रस्तुत किया।

1. अनुकरण सिद्धान्त में ही अनुरणन सिद्धान्त को भो सम्मिलित मानना चाहिए क्योंकि दोनो ही सिद्धान्तों में ध्वनियों के अनुकरण पर शब्दों के निर्माण की कल्पना की गई है। उदाहरण स्वरूप– बालक माता–पिता के होठों का अनुकरण कर होंठ चलानें का प्रयत्न करता है और पारिवारिक सदस्य बालक द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अर्थ समझ जाते हैं।

2. इसके साथ ही आदिम मानव भावावेश में जिन ध्वनियों का उच्चारण अनायास करता था उनसे निर्मित शब्दों को स्थिति भो उनकी भाषा में अवश्य रही हागी।

3. उपर्युक्त दोनो सिद्धान्तों से निर्मित शब्दों के अलावा भाषा में प्रयुक्त अन्य शब्दों का समाधान स्वीट ने प्रतीक सिद्धान्त के द्वारा किया। प्रारम्भ में भाषा का स्वरूप स्थूल एवं वर्णनात्मक था। उसी से, बाद में धीरे – धीरे सूक्ष्म, लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक भाषा का विकास होता है। भाषा में ऐसी अनेक ध्वनियां है जो पहले स्थूल रूप में प्रयोग में होती थी बाद में उसका लाक्षणिक, सूक्ष्म एवं व्यंजनात्मक रूप में प्रयोग होने लगा। उदाहरण स्वरूप पत्र शब्द को ले सकते है। प्रारम्भ में पत्र शब्द वृक्षो के पत्ते के अर्थ में प्रयुक्त होता था, बाद में अनेक स्थूल एवं व्यंग्य अर्थों में इसका प्रयोग होने लगा।

4. उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों में उपचार सिद्धान्त का समावेश कर लिया जाये तो इस प्रश्न के अधिकांश संदेहों का समाधान हो सकता है। उपचार शब्द का अर्थ है – ज्ञात के आधार पर अज्ञात की व्याख्या। इस सिद्धान्त के द्वारा भाषा को स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर ले जाने का प्रयास किया जाता है। जैसे अफ्रीका की एक भाषा ''सासुतों'' है जिसमें मक्खी के भिनभिनानें की ध्वनि के आधार पर उसे ''न्त्सी'' कहते है। इसी आधार पर इस भाषा में चापलूस व्यक्ति कों ''न्त्सीनसी'' कहने लगे क्योंकि वह भो जिसकी खुशामद करता है उसके चारों ओर चक्कर काटता रहता है। आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी स्नायुओं के खुलने बन्द होने को ''मूयुम'' कहते है इसी आधार पर पुस्तक को ही ''मूयुम'' कहना प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार संस्कृत भाषा में ''व्यय'' और 'कृप' धातु पहले भोतिक पदार्थो के कम्पन को बताती है। जैसे – ''व्यथमान पृथिवी'' तथा ''कपितः पर्वतः'', जिसका अर्थ था कांपती हुई पृथ्वी व चलता हुआ पहाड, किन्तु कालान्तर उपचार सिद्धान्त के आधार पर मानसिक सूक्ष्म अर्थों में व्यथा का प्रयोग मानसिक पीडा के अर्थ में तथा कोप का प्रयोग क्रोध के अर्थ में किया जाने लगा।

कुछ शब्द ऐसे भो है जो एक साथ दो वर्गों में प्रयुक्त होते हैं जैसे HUSH शब्द वह भावव्यंजक होता हुआ भो प्रतीकात्मक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि स्वीट ने भाषा को अनुकरणात्मक, भावावेश व्यंजक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से आरम्भ हुई माना बाद में धीरे धीरें शब्दों का अर्थ विकसित होता गया तथा नवीन शब्द बनने लगें।

समीक्षा –

1. स्वीट का सिद्धान्त अनेक सिद्धान्तों का समन्वित रूप है।
2. इस मत में पर्याप्त सत्यता होने के बावजूद भो वह निर्दोष नही है।
3. इस सिद्धान्त से भो भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न पूरी तरह सुलझ नही पाया।

इस सिद्धान्त के लिये इतना कहा जा सकता है कि यह एक व्यापक सिद्धान्त है जो भाषा में प्रयुक्त शब्दों के विकास को स्पष्ट करता है।

16.6 पारिभाशिक शब्दावली

1. **भाषा** – महर्षि पतंजलि : इन्होने पाणिनी के अष्टाध्यायी के महाभाष्य में भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है**"व्यक्तां वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।"**
2. **मातृ भाषा** – मातृ भाषा को बालक अनुकरण के द्वारा सहज ही रूप में तब सीखता है जब उसकी बुद्वि अविकसित होती है।
3. **निगमन पद्धति** – निगमन पद्धति अर्थात प्रत्यक्ष मार्ग । प्रत्यक्ष मार्ग में भाषा की उत्पत्ति के मूल बिन्दु को विभिन्न आधारों से पकड़ने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् ये सीधे जन्म को पकड़ने का प्रयास करते हैं। परोक्ष मार्ग में भाषा की उत्पत्ति पर दृष्टि न रखते हुए उसके वर्तमान रूप का विवेचन किया जाता है।
4. **आगमन पद्धति** – आगमन पद्धति अर्थात् परोक्ष मार्ग।
5. **माहेश्वर सूत्र** – संस्कृत की सम्पूर्ण वर्णमाला अइउण्, ऋलृक् आदि चौदह माहेश्वर सूत्रों से हुई है।

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषा किसे कहते है ? भाषा का अर्थ बताइये।
2. भाषा की विभिन्न विद्वानों द्वारा दो गई परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।
3. "भाषा एक अर्जित सम्पत्ति है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में भाषा की प्रकृति एवं विशेषताओं के बारे मे बताईये।
4. "भाषा की उत्पत्ति का विषय भाषा–विज्ञान का विषय है या नहीं" इस कथन की समीक्षा करते हुए यह बताइये कि दैवी उत्पत्ति सिद्वान्त कितना मान्य है ? उसे अस्वीकार करने के क्या कारण हैं ? स्पष्ट कीजिए।

16.8 सारांश

उपर्युक्त सिद्धान्तों के विवरण के आधार पर हमने देखा कि कोई भो सिद्धान्त स्वयं में पूर्ण नहीं है और न ही भाषा की उत्पत्ति संबंधी प्रश्न का समाधान न्यायसंगत कर पा रहा है। मानव के पास भाषा एक अद्भत शक्ति के रूप में है जिसके रहस्य को सुलझाना जटिल है। विद्वान भाषा के विकास की प्रवृति को तो समझा सकते हैं किन्तु उसके उत्पत्ति के प्रश्न को स्पष्टतः प्रतिपादित नही कर पा रहे हैं। इस सम्बन्ध में सीताराम चतुर्वेदी का कथन महत्वपर्ण है :–

"भाषा की उत्पत्ति के रहस्य का उद्घाटन करने के लिये बहुत प्रयत्न किये गये, किन्तु इनमें से अधिकांश केवल अटकलपूर्ण कल्पना के आयाम मात्र है। मनोविज्ञान की दृष्टि से

न तो अब आदिम भाषाऐं रही हैं और न ही संकेतात्मक प्रक्रिया के मनोविज्ञान का इतना ज्ञान है कि जो भाषा के उदगम की समस्या का समाधान कर सकें। सम्भवतः भाषा की उत्पत्ति की समस्या का समाधान भाषाशास्त्रियों की परिधि से बाहर की बात है।''

16.9 संदभ ग्रंथ सूची

1. भाषविज्ञान,भोलानाथ तिवारी,किताब महल,इलाहाबाद,1951.
2. भाषा और भाषाविज्ञान, प्रो. रामाश्रय मिश्र,उन्मेष प्रकाशन, पुणे,1986.
3. आधुनिक भाषाविज्ञान, डॉ. राममणि शर्मा,वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003.
4. भाषाविज्ञान एवं भाषा शास्त्र, डॉ. कपिल देव द्विवेदी,विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,2002.